जो वापस नहीं होते

भारत में कथित रूप से बढ़ती असहिष्णुता के विरोध में विभिन्न क्षेत्रों की नामी हस्तियों द्वारा सम्मानों-पुरस्कारों को लौटाने का सिलसिला काफी जोर-शोर से चला है। लगभग सौ साहित्यकारों, लेखकों, वैज्ञानिकों, फिल्मकारों आदि ने पुरस्कार वापस किए हैं। इन लोगों द्वारा पुरस्कार-वापसी की वजह से जमीनी सच्चाई के भीतर या इतर 'असहिष्णुता' की ओर सबका ध्यान खिंचा है। इस मुद्दे पर संसद में बहस हुई है और वापसी के विरोध में सभा-संगोष्ठी, प्रदर्शन-मार्च भी हुए हैं। पक्ष-विपक्ष में हो रहे हो-हल्ला के कारण चाहे-अनचाहे चर्चा-विमर्श असहिष्णुता पर आकर केन्द्रित हो गए हैं। समाज में असहिष्णुता है - इस बात से कौन इनकार कर सकता है, किंतु न तो यह एक-दो महीने की है और न ही कुछएक क्षेत्रों की, बल्कि विचित्र-विचित्र रूप-ढंगों वाली सार्वदेशिक व सार्वकालिक समस्या है। सच तो यह है कि कुत्सा, छल-छद्म, ईष्या-विद्वेष, साजिश, भ्रष्टाचार, अनाचार से आच्छादित वातावरण में असहिष्णुता शब्द वास्तविकता का उद्भेदक नहीं, वरन् इन सबके प्रति नरमी और सहिष्णुता ही दर्शाता है।

घर-स्थलों पर टँगे बिल्कुल साधारण कैलेण्डरों में कई जगह देखने-पढ़ने को मिलता है कि तीन चीजें निकलने के बाद कभी वापस नहीं होतीं - तीर कमान से, बात जुबान से और प्राण शरीर से। शास्त्रीय कथनों व आप्त वचनों से परे ऐसी लोक-सूक्तियों में जीवन का गहरा रहस्य व ज्ञान-संदेश समाहित रहता है, जो जीवन के बिल्कुल साथ व पास का होता है। इनकी इसी ताकत के कारण ट्रकों, टेंपुओं, मेटाडोरों, बसों सहित अन्य सार्वजनिक वाहनों के पीछे लिखे पद्यमय तुकबंदियों का संग्रह करके पुस्तक के रूप में प्रकाशित कराने का इरादा हिन्दी लेखिका, संप्रति गोवा की राज्यपाल मृदुला सिन्हा जी पन्द्रह-बीस साल पहले अक्सर व्यक्त करती थीं। यह ऐसा कार्य था जिसमें विद्यार्थी के लिए बताए परंपरागत पाँचों लक्षण - कौए के समान चेष्टा, वगुलों के समान ध्यान, कुत्ते के समान नींद, कम खाना तथा घर से निरंतर अलग रहना आवश्यक होता। प्रत्येक खड़ी-भागती गाड़ी के पीछे तीक्ष्ण दृष्टि से देखना कि कोई कामलायक तुकबंदी लिखी हुई है या नहीं। यदि है तो उसे पलभर में पढ़कर नोट कर लेना काफी चुस्ती, फुर्ती व चौकसी का काम है जो न केवल पैदल रहकर हो सकता है और न गाड़ी पर चढ़कर ही। पता नहीं, अभी तक ऐसी कोई पुस्तक तैयार हो पाई है या नहीं, लेकिन ऐसा हो जाता तो साधारणता, सहजता व सरसता के अविश्वसनीय सम्मिश्रण के कारण यह असाधारण लोकज्ञान-ग्रंथ सिद्ध होता।

सम्मान-पुरस्कार वापस हो पाते हैं या नहीं - इस पर विचार से पहले पूर्वोक्त उन तीन चीजों की चर्चा उचित है जो वापस नहीं होते। पहली चीज तीर है जो कमान से छूटने के बाद लौटाया नहीं जा सकता। तीर अस्त्र है जो प्रक्षेपित होता है, कमान शस्त्र है जो तीर को प्रक्षेपित करता है। सामान्यतः अस्त्र को छोड़कर-फेंककर वार किया जाता है, जबकि पकड़कर शस्त्र द्वारा संघात किया जाता है। शस्त्र से फेंककर भी प्रहार किया जा सकता है, जैसे चाकू, भाला, तलवार आदि से। अस्त्र जब एक बार लक्ष्य की ओर छोड़ दिया जाता है तो फिर उसी अस्त्र पर संधानकर्ता का कोई नियंत्रण नहीं रहता, न लक्ष्य बदला जा सकता है, न दिशा नियंत्रित की जा सकती है और न ही प्रयोक्ता द्वारा निरस्त किया जा सकता है। दूसरों द्वारा यह निरस्त हो सकता है। यह बात वर्तमान के अत्याधुनिक हथियारों पर भी लागू होती है। पिस्तौल, बंदूक, रायफल, मशीनगन, मिसाइल, टैंक आदि से गोली-बारूद-बम चलने-प्रक्षेपित होने से पहले ही लक्ष्य तय करना पड़ता है, छोड़ दिए जाने के बाद किसी भी हालत में नियंत्रित नहीं किया जा सकता, लौटाया नहीं जा सकता। धनुष-बाण के जमाने में भी तीरास्त्र वापस नहीं होते थे, लेकिन अपवादस्वरूप ही सही, इनके लौटाए जाने का उल्लेख प्राचीन ग्रंथों में मिलता है। 'महाभारत' में पांडवों के वध हेतु अश्वत्थामा द्वारा चलाये गए ब्रह्मास्त्र के जवाब में अर्जुन के द्वारा भी ब्रह्मास्त्र चलाए जाने का जिक्र है। बीच-बचाव के लिए आए वेदव्यास और श्रीकृष्ण के कहने पर अर्जुन ने तो अपने ब्रह्मास्त्र को वापस कर लिया था, परंतु अश्वत्थामा को वापस करना नहीं आता था। लक्ष्य की दिशा बदल देने की क्षमता उसके पास थी। उसने अपने ब्रह्मास्त्र का रुख पांडवों की तरफ से घुमाकर प्रतिहिंसा की ज्वाला को किस विध शांत करने के लिए उत्तरा के गर्भ की ओर कर दिया, जिससे गर्भ में पल रहा शिशु गर्भ में ही मर गया। आधुनिक अस्त्रों को छूटने के बाद लौटाना अभी तक संभव नहीं हो पाया है।

जहाँ तक शरीर के भीतर से प्राण के निकल जाने के बाद वापस न लौटने की बात है, तो जब इसे आते हुए, जाते हुए और अनवरत रहते हुए कोई नहीं देख पाता, तो फिर यदि लौटे भी तो लौटते समय कैसे देख पाएगा? देह के चेतन-अवचेतन लक्षणों को देखकर प्राण के होने-न होने का निश्चय किया जाता है, पर किसी भी हालत में साक्षात् प्राण के दर्शन नहीं होते। जब कभी कोई 'मृत' व्यक्ति जिन्दा हो जाता है, तब भी यही सोच बनती है कि व्यक्ति मृतप्राय था, पर प्राण नहीं निकले थे। चिरंतन लौकिक-अलौकिक सत्य यही है कि निकलने के बाद प्राण उसी शरीर में फिर कभी वापस नहीं आते, हालाँकि मृत व्यक्तियों के जीवित हो जाने के नए-पुराने किस्से बहुत कम ही सही, पर हैं। 'महाभारत' में ही युधिष्ठिर के धर्मज्ञान व व्यवहार से संतृप्त होकर यक्ष के रूप में उपस्थित यमराज द्वारा भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव को पुनर्जीवित करने का उल्लेख है। उत्तरा के गर्भ से उत्पन्न मृत बालक परीक्षित को श्रीकृष्ण द्वारा जीवन प्रदान करने की बात भी उल्लिखित है। सावित्री के पातिव्रत्य से प्रभावित होकर मृत्यु के देवता यमराज द्वारा सत्यवान के प्राण लौटा देने की कथा भी खूब प्रचलित है।

प्राचीन ग्रंथों, किवदंतियों में तीर तथा प्राण के लौट आने के कुछएक उदाहरण तो फिर भी मिल जाते हैं, लेकिन जुबान से निकली वाणी के लौटने की मिसाल एकदम कपोलकल्पित रूप में भी कभी, कहीं नहीं मिलती। बड़े-बड़े सिद्ध-तपस्वी भी ऐसा नहीं कर सके

हैं, हालाँकि पूर्वकथन का प्रभाव घटा-बढ़ा देने का दृष्टांत अवश्य मिलता है। आधुनिक लोकतांत्रिक समाज में भी वक्तव्य सीधे वापस तो नहीं हो पाते, लेकिन छेड़छाड़, तोड़-मरोड़ और मनमानी व्याख्या द्वारा अर्थ का अनर्थ और अनर्थ का अर्थ होकर पूर्वकथन के विपरीत भाव भी ध्वनित करते हैं। पूर्वोक्त को उत्तरोक्त द्वारा नियंत्रित करने की नैतिक-अनैतिक शक्ति वक्ता के पास होती है। इसका एक से बढ़कर एक नमूना व्यक्ति से लेकर विश्व समाज तक मिल जाएगा।

अस्तु, वापसी की उपयोगिता की तलाश सम्मानों-पुरस्कारों के संबंध में है। खिताब, पदक, पुरस्कार अनूठे-अद्वितीय कार्य के लिए देने की परंपरा रही है। आजकल अधिकांश प्रदाताओं के यहाँ पारितोषिक वितरण के लिए बजट निश्चित होता है और नियमानुसार समयबद्ध तरीके से वितरण की बाध्यता तय होती है। पुरस्कार देना ही है, इसका बजट खर्च करना ही है, अतः इस भावना के तहत किसी-न-किसी को सम्मानित-पुरस्कृत किया जाता है, जबकि पहले ऐसा नहीं था। पुरस्कार परिश्रम के बाद की वस्तु है। पुरस्कार पर लेने वाले का कोई अधिकार नहीं होता, जैसा कि पारिश्रमिक पर होता है। इसका महत्त्व वहाँ अधिक बढ़ जाता है, जहाँ उचित पारिश्रमिक के भुगतान पर अंकुश-अड़ँगा के साथ-साथ कार्य के अवसर में अवरोध रहता है। सम्मान-पुरस्कार के लालच में भी अच्छा कार्य संपन्न हो सकता है; इसमें कोई बुराई भी नहीं, तथापि इसे नैतिक नहीं कहा जा सकता है क्योंकि यह पारिश्रमिक रूपी फल तक ही नहीं, उससे आगे पुरस्कार को ध्यान में रखकर किया जाता है। इसके लिए तिकड़म, जुगाड़, फर्जीवाड़ा, राजनीति आदि का सहारा लिया जाता है और कई बार इन्हीं आधारों पर पुरस्कार के लिए व्यक्तियों, संगठनों व कार्यो का चुनाव होता है। चयित व्यक्ति व संस्था की सुख्याति स्वतः फैलने लगती है, लोक प्रसिद्धि मिलती है। यह परोक्ष लाभ अभिनंदन-प्रशस्ति पत्र तथा धनराशि के अतिरिक्त होता है, जो कभी वापस नहीं हो सकता। मान पत्र व पुरस्कार की राशि ही वापस की जाती है, लेकिन केवल यही पुरस्कार नहीं है, यद्यपि धनराशि से पुरस्कार के छोटे-बड़े होने का पता चलता है। नोबल पुरस्कार इसलिए भी सर्वोच्च है, क्योंकि इसके साथ दी जाने वाली रकम सभी पुरस्कारों से बड़ी है। पुरस्कारों से धनराशि हटा दी जाए तो उनकी चमक फीकी पड़ जाएगी, संभव है कि उनके प्रति वह क्रेज-आकर्षण न रहे।

प्रसिद्धि-पुरस्कार, यश-सम्मान से गौरवान्वित होना बिल्कुल स्वाभाविक है, फिर भी थोड़े-से लोग होते हैं जो अपने किसी बड़े-अच्छे कार्य के लिए भी सम्मान-पुरस्कार की चाहत नहीं रखते, अनायास-अप्रत्याशित रूप में प्राप्त होने पर लेने से मना कर देते हैं। ऐसा दुनिया के सर्वोच्च सम्मान के साथ हो चुका है। प्रख्यात विचारक-लेखक सार्त्र ने 1964 ई. में साहित्य का नोबल पुरस्कार लेने से इनकार कर दिया था। वे सच में पुरस्कृत होने के पात्र थे, शायद इसी वजह से मना करने का साहस दिखा पाए। कुछएक लोग जिन्हें सामने से सम्मान-पुरस्कार मिलता है, लेकिन अप्रत्यक्षतः, प्रताड़ना, दमन, शोषण व तिरस्कार का शिकार होना पड़ता है, वे भी दिखावटी कुलीनता के खिताबों को गले में लटकाना नहीं चाहते। कई लोग न चाहते हुए भी आर्थिक सहायता के तौर पर पुरस्कारों को ग्रहण कर लेते हैं और आर्थिक मजबूरीवश चाहकर भी वापस नहीं कर पाते। इन दिनों जो लोग पुरस्कार व उसकी धनराशि लौटा रहे हैं, वे सब खाते-पीते, संपन्न तबके के लोग हैं। प्रोत्साहन-पुरस्कार जरूरत के हिसाब से विपन्न प्रतिभावानों को नहीं दिए जाते - पुरस्कारों की वापसी से भी यह साबित होता है। बीस-तीस साल पहले मिले पुरस्कारों की उतनी ही राशि लौटाना विचित्र लगता है क्योंकि तब के लाख-दो लाख अब के दस-बीस लाख के बराबर हो चुके हैं। इतने सालों तक पुरस्कारों से मिली ख्याति से महिमा मंडित होने के बाद लौटाने का क्या औचित्य है? समय बीतने के साथ सभी चीजों और स्वयं व्यक्ति की आभा धूमिल पड़ने लगती है; ऐसे ही सम्मान-पुरस्कार भी सारहीन -निरर्थक लगते हैं। इनके होने-न-होने का कोई मतलब नहीं रह जाता। लेकिन लौटाने से समाज-सरकार का ध्यान तो खिंच ही जाता है। अपने विक्षोभ को लोकतांत्रिक तरीके से अभिव्यक्त करने का अधिकार और जिम्मेवारी सबकी है। लेकिन यह कहीं की खींज कहीं उतारने के लिए प्रायोजित नहीं होना चाहिए। कला-विज्ञान के माध्यम से अन्याय के चतुर्दिक प्रतिकार की सशक्त पृष्ठभूमि तैयार करने की आवश्यकता है। केवल पुरस्कार वापसी से क्या होगा? याद रहे, जिसे स्वेच्छापूर्वक वापस किया जा सकता है, उसे जबरन छीना भी जा सकता है। हाल ही में पूर्व प्रधानमंत्री राजीव गांधी से 'भारत रत्न' वापस लेने की मांग भी सुर्खियों में आ चुकी है। वह भी तब, जब राजीव गांधी इस दुनिया में नहीं हैं। जीवित व्यक्तियों की बजाय दिवंगत लोगों को पुरस्कार देने व वापस लेने का कोई विशेष तुक नहीं है, व्यक्ति की परख जिंदा रहते समय होनी चाहिए।

वैज्ञानिक व्यवहार के अनुसार कुछ पदार्थ परिवर्तित हो जाने के उपरांत यदि चाहें तो अपनी पूर्व अवस्था में लौट सकते हैं। क्या पुरस्कार लौटाने के बाद व्यक्ति अपनी पुरानी स्थिति में आ जाता है? सच तो यह है कि कई बार सम्मानों-पुरस्कारों को प्रदान-प्राप्त करने से अधिक प्रसिद्धि वापस करते समय मिलती है। जिन्हें पुरस्कार लेते नहीं देखा-सुना, उन्हें वर्तमान में हम सब लौटाते हुए देखते-सुनते हैं। एक प्रकार से पुरस्कार का यह त्याग सम्मान का पुनर्जीवन है, पुनर्प्राप्ति है प्रशस्ति पत्र व नकद धनराशि से परे। पुरस्कार वापस तो नहीं होते, पर उनसे कई गुना अधिक बड़ा अपमान-तिरस्कार हो, तो सम्मान नष्ट हो जाता है। बहुत सारी चीजें सीधी लगने पर भी वास्तव में उल्टी होती हैं और कुछ उल्टी दिखने पर भी वास्तव में सीधी होती हैं। आखिर ऐसा दृष्टिगत होता ही है -

जो मिलकर भी न मिले, वह प्यार होता है,
जो दिखकर भी न दिखे, वह चमत्कार होता है।
जो मिटकर भी न मिटे, वह नाम होता है,
जो लौटकर भी न लौटे, वह खिताब होता है।।